वर्त्तमान संदर्भ में जैन गणित की उपादेयता

• डॉ. परमेश्वर झा

गणित की व्यापकता सार्वभौम है। वेदांग ज्योतिष (१२०० ई.पू.) में इसे सबसे ऊँचा स्थान प्रदान किया गया है -'गणितं मूर्धनिस्थितम्'।[१] इसकी महत्ता के सम्बन्ध मे जैन गणितज्ञ महावीराचार्य की उक्ति है-

'लौकिके वैदिके वापि तता सामायिकेऽपि यः।
व्यापारस्तत्र सर्वत्र संख्यानमुपयुज्यते॥'[२]

अर्थात् 'सांसारिक, वैदिक तथा धार्मिक आदि सभी कार्यों में गणित उपयोगी है। पुनः उन्होंने उद्घोषणा की है -

'बहुभिर्विप्रलापैः किं त्रैलोक्ये सचराचरे।
यत्किंचिग्दस्तु तत्सर्वं गणितेन विना न हि॥' [३]

अर्थात् जो कुछ इन तीनों लोकों में चराचर (गतिशील एवं स्थिर) वस्तुएं हैं, उनका अस्तित्व गणित से विलग नहीं।' वस्तुतः संख्या का ज्ञान जीवन के हर पहलू के लिए आवश्यक है। सृष्टि के आरम्भ से ही इसकी उपयोगिता सिद्ध हुई। विश्व के प्राचीन सभ्य देशों बेबिलोनिया, मिश्र, यूनान, भारत आदि में इसका विकास समान रूप से होता रहा। भारत में गणित-ज्ञान की झाँकी यहाँ के प्राचीन ग्रंथों-वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, पुराण आदि में मिलती है। भारतीय संस्कृति के संवर्द्धन एवं संरक्षण में जैनाचार्यों का महान् योगदान है। गणित भी उनके चिंतन एवं मनन का विषय रहा है। गणितीय सिद्धान्तों द्वारा सृष्टि-संरचना को स्पष्ट करना तथा कर्म सिद्धान्त की व्याख्या करना जैनाचार्यों का प्रमुख दृष्टिकोण है। फलस्वरूप जैन आगम ग्रंथों में गणितीय सामग्री प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में विपुल परिमाण में विद्यमान है। यह तो अब निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय गणित के अंध युग (५०० ई.पू.-५०० ई.) में भी यहाँ गणित का विकास होता रहा जिसमें जैनाचार्यों का अमूल्य योगदान है।[४] सचमुच जैन आगम ग्रंथ भारतीय गणित ज्योतिष की श्रृंखला की टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का कार्य करते हैं। इन ग्रंथों के अवलोकन से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जिन सिद्धान्तों के आविष्कार का श्रेय पाश्चात्य गणितज्ञों को दिया जाता है उनमें से बहुत सारे सिद्धान्तों को कई शताब्दियाँ पूर्व ही जैनाचार्यों ने लिपिबद्ध कर रखा है। परवर्त्ती विद्वानों ने पूर्णतः गणितीय ग्रन्थों का भी क्षेत्रमिति आदि शाखाओं से सम्बन्धित मौलिक एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों-सूत्रों का विवेचन मिलता है। वर्त्तमान संदर्भ में इन गणितीय सिद्धान्तों की प्रासंगिकता एवं उपादेयता का विश्लेषण करना ही इस निबंध का अभीष्ट है।

इस सिलसिले में सर्वप्रथम जैनाचार्यों की गणितीं उपलब्धियों का सिंहावलोकन करना आवश्यक प्रतीत होता है। जैन धर्म के महत्वपूर्ण ग्रंथ स्थानांग सूत्र (३२४ ई.पू.) के निम्न सूत्र में गणित विज्ञान के दश विषयों की चर्चा है :-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'परिकम्म ववहारो रज्जु रासी कलासवण्णोय।
जावन्तावति वग्गो घणो ततः वग्गावग्गो विकप्पो व॥' [५]

अर्थात् 'परिकर्म (मूलभूत प्रक्रियाएँ), व्यवहार (विभिन्न विषय), रज्जु (ज्यामिति), राशि (समुच्चय, त्रैराशिक), कला सवर्ण (भिन्न सम्बन्धी कलन), यावत-तावत (सरल समीकरण), वर्ग (वर्ग समीकरण), धन (धन समीकरण), वर्ग-वर्ग (द्विवर्ग समीकरण) एवं विकल्प (क्रमचय-संचय) गणित के ये दश विषय हैं। इससे स्पष्ट होता है, कि ईसा के ४०० वर्ष पूर्व ही जैनाचार्यों को इन विषयों का समुचित ज्ञान हो गया था। परवर्त्ती विद्वानों ने पर्याप्त रूप से इन्हें पल्लवित एवं पुष्पित किया।

गणित में अभी तक सबसे अधिक क्रांतिकारी कदम हुआ है स्थान-मान-संकेत की दशमलव पद्धति का आविष्कार जो भारतवासियों की ही देन है। किसी भी संख्या को सरलता से लिखने के लिए दश अंक (शून्य एवं १ से $\sqrt{.}$तक) पर्याप्त हैं। उपलब्ध पुरालेख सम्बन्ध प्रमाणों में यह प्रमाणित होता है कि इसका आविष्कार प्रथम शताब्दी ई.पू. या इससे पूर्व ही हो चुका था। जैन आगम ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है। जैनों को अंतरिक्ष एवं समय की माप के लिए बहुत बड़ी-बड़ी संख्याओं की आवश्यकता पड़ती थी जिसके लिए यह पद्धति बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई। अनुयोगद्वार सूत्र (प्रथम शताब्दी ई.पू.) के अनुसार एक शीर्ष प्रहेलिका = $(८४०००००)^{२८}$ पूर्वी [६]। आर्यभट प्रथम (४७६ ई.) के समकालीन अथवा समीपवर्त्ती जैन दार्शनिक यतिवृषभ की कृति तिलोय पण्णती में काल-माप एवं लोक माप के लिए विशाल संख्याओं एवं इकाइयों को परिभाषित किया गया है। इनमें से काल की सबसे बड़ी संख्यात इकाई अचलात्म है जिसका मान $(८४)^{३१} \times (१०)^{\sqrt{०}}$ वर्ष है।[७] षट्खंडागम (प्रथमशताब्दी) इस पर लिखी टीका धवला (९वीं शताब्दी) गणित सार-संग्रह आदि ग्रंथों में तो स्थानमान पद्धति का उपयोग हुआ है तथा उसकी विस्तृत रूप से चर्चा भी है। इन ग्रंथों में ४० पदों तक स्थानमान की सूची प्रस्तुत की गयी है। जहाँ भारत में यह प्रणाली बहुत पूर्व से ही प्रचलित थी, वहाँ पाश्चात्य देशों में फिबोनकी, जोन आफ हैलीफाक्स, पीसा के क्योनार्डो आदि विद्वानों की रचनाओं में १२वीं १३वीं शताब्दी में इसका उल्लेख मिलता है। इस तरह यूरोप के विभिन्न देशों ने इस पद्धति को अपनाया जो आज प्रायः समस्त संसार में प्रचलित है।

पूर्णांक संख्याओं की तरह भिन्नों के विकास में भी जैनाचार्यों का अति विशिष्ट स्थान है। भिन्नों का लेखन एवं तत्सम्बन्धी संक्रियाओं के साथ-साथ विभिन्न सूत्र भी सूर्यप्रज्ञप्ति (५ वीं शताब्दी ई.पू.), स्थानांग सूत्र, तिलोय पण्णती, षट्खंडागम, धवला आदि प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध है। महावीराचार्य ने तो भिन्नों से सम्बन्धित सारे तत्वों को प्रतिपादित किया है।[८]

उत्तराध्ययन सूत्र (३०० ई.पू.) एवं अनुयोगद्वार सूत्र में गणितीय राशि की घातों को दर्शाने की विधि स्पष्ट रूप से अंकित है जिससे ज्ञात होता है कि प्रथम शताब्दी इ.पू. या उसके पूर्व ही जैनाचार्यों को घातांकों के नियमों का ज्ञान हो गया था। अनुयोगद्वार सूत्र में प्रथम वर्ग, द्वितीय वर्ग आदि प्रथम मूल, द्वितीय मूल आदि का प्रयोग पाया जाता है। साथ ही संसार की जनसंख्या बताने के लिए २६४x२३२=२ ६ का व्यवहार हुआ है।[९] धवला में तो घातांक सम्बन्धी विभिन्न नियमों का उपयोग भी हुआ है जिन्हें निम्न रूप में व्यक्त किया जा सकता है :- $x^m . x^n = x^{m+n}$, $x^m / x^n = x^{m-n}$, $(x^m)^n = x^{mn}$ आदि।[१०] इन नियमों के उल्लेख से यह सुनिश्चित होता है कि तत्कालीन जैनाचार्यों को घातांक के इन नियमों का ज्ञान हो गया था। ये नियम इसी रूप में आज भी प्रचलित हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती सूत्र (३०० ई.पू.), स्थानांग सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र आदि जैन ग्रंथों में अति प्राचीन काल से ही क्रमचय-संचय सम्बन्धी विषय भंग एवं विकल्प शीर्षकों के अन्तर्गत विशदता के साथ प्रतिपादित किया गया है। भगवती सूत्र में इसका विवेचन व्यापक रूप में किया गया है। एकक संयोग, द्विक संयोग, त्रिक संयोग आदि मूलभूत प्रमाण दिए गए हैं[११] जिन्हें निम्नलिखित रूप में व्यक्ति किया जा सकता है :-

$$n_{c1} = n,\ n_{c2} = \frac{n(n-1)}{1.2},\ n_{c3} = \frac{n(n-1)(n-2)}{1.2.3}$$

तथा ${}^{n}p_{1} = n,\ {}^{n}p_{2} = n\ (n\text{-}1)$ आदि।

यतिवृषभ, वीरसेनाचार्य, शीलांक, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आदि जैन विद्वानों ने तत्सम्बन्धी नियमों का विवेचन किया है तथा विभिन्न पहलुओं पर भी विचार किया है। क्रमचय संचय सम्बन्धी से नियम अभी भी प्रयोग में लाए जाते हैं। इसके साथ ही द्विपद प्रमेय के विकास का भी उन लोगों ने पथ प्रशस्त किया है।

विभिन्न प्रकार के समीकरणों यथा सरल, द्विघाती एवं अनिर्णित प्रथम घातीय समीकरणों को हल करने की विधियाँ भी जैनाचार्यों को ज्ञात थी। स्थानांग सूत्र में प्रयुक्त यावत-तावत, वर्ग, धन, वर्ग-वर्ग आदि शब्दों में इसकी पुष्टि होती है।

लघुगणक सिद्धान्त के जनमदाता जाने नेपियर (१५५०-१६१७ ई.) एवं वर्गी (१६०० ई.) माने जाते हैं, पर उनसे लगभग सात सौ वर्ष पहले ही धवला में इसका प्रयोग पाया जाता है। संक्रियाओं का उपयोग मिलता है जो लघुगणक के निम्नलिखित नियमों के परिचायक हैं [१२]:-

$$\log_2 (x/y) = \mathrm{Log}_2 x - \log_2 y,\ \log_2 (xy) = \log_2 x + \log_2 y$$

$\log 2^{2x} = x,\ \log_2 (2^x)x^x = x^x \log_2 (z^x)$ आदि आधार २ की जगह ३, ४ आदि किए जा सकते हैं तथा उन्हें सामान्यीकृत भी किया जा सकता है।

आज राशि सिद्धान्त (समुच्चय) इतना विकसित हो चुका है कि कोई विज्ञान इससे न अछूता है और न ही इसके बिना आधारित है। इसके प्रवर्त्तक जार्ज केन्टर (१८८५-१९१५) माने जाते हैं, पर उस राशि सिद्धान्त का विवेचन अति प्राचीन काल में ही जैन ग्रंथों में उपलब्ध है। षट्खंडागम तिलोय पण्णती, धवला, त्रिलोकसार आदि ग्रंथों में तत्सम्बन्धी अभिधारणा, भेद-उपभेद, उदाहरण तथा उन पर संक्रियाएँ दृष्टिगोचर होती हैं[१३] विभिन्न प्रकार की राशियों का उल्लेख हैं तथा परिमित अपरिमित, रिक्त एवं एकल समुच्चयों के उदाहरण भी उपलब्ध है।

श्रेणियों के सम्बन्ध में जैनाचार्यों का योगदान अद्वितीय है। तिलोयपण्णती एवं त्रिलोकसार में विभिन्न प्रकार की श्रेणियों का विशद विवेचन है। नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती (१० वीं शताब्दी) ने धाराओं का प्रकरण विस्तार पूर्वक लिखा है। उन्होंने १४ प्रकार की धाराओं की विस्तृत चर्चा के साथ-साथ सूत्रों का विश्लेषण भी किया है। उनके ग्रंथ त्रिलोक सार में तो वृहत्धारा परिकर्म नामक एक गणितीय ग्रंथ की भी चर्चा है।[१४] इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि उस समय तक धाराओं से सम्बन्धित स्वतंत्र जैन ग्रंथ उपलब्ध था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन ग्रंथों में ज्यामितीय विवेचन का बाहुल्य है तथा क्षेत्रमिति विषयक सामग्री विपुल परिमाण में उपलब्ध है। सूर्य-प्रज्ञप्ति में विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों की चर्चा है। भगवती सूत्र एवं अनुयोगद्वार सूत्र में ठोस आकृति धनत्रयस्, धनचतुरस्र, धनायत, धन वर्ग एवं धन परिमंडल, आयत, गोल, वेलन, सम्बन्धी सूत्रों का प्रयोग मिलता है।[१५] उमास्वामी (१५० ई.पू.) की रचना तत्वार्थाधिगमसूत्र भाष्य में अनेक मापिकी सूत्र विद्यामान हैं जिन्हें निम्न रूप में लिखा जा सकता है। [१६] :- यदि किसी वृत्त की परिधि के लिए p, जीवा = c, वृत्तखंड के चाप की लम्बाई = s, वृत्तखंड की ऊँचाई =H, वृत्त की त्रिज्या =R, व्यास =D, क्षेत्रफ७ =A व्यक्त किया जाय तो $P = \sqrt{१०D^2}$; $A = \frac{1}{4}$ P.D, $C = \sqrt{४H\ (D\text{-}H)}$ $H = \frac{1}{2}(D\sqrt{D^2-C^2})$, $S = \sqrt{6h^2-c^2}$ और $D = \left(h2 + \frac{c2}{2}\right) / h$ तिलोयण्णती में कुछ प्रमुख प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित हैं १६ :- (१) लम्बवृत्तीय बेलन का आयतन $10r^2h$; (२) लम्ब प्रिज्म के छिन्नक का आयतन = आधार का क्षेत्रफल x प्रिज्य की लम्बाई, (३) वृत्त की परिधि D^2 X 10 (४) वृत्त के चतुर्थांश की जीवा का वर्ग $=२R^2$, (५) वृत्त की जीवा $= \sqrt{4\left(\frac{D}{2}\right)^2 - \left(\frac{D}{2}\right)c}$ (६) वृत्तखंड का चाप = s $= \sqrt{26(dth)^2-d^2}$ (७) $= H = \sqrt{\frac{D}{2}}\ [\frac{D2}{4} - \frac{C}{4}]$ वृत्तखंड की ऊँचाई (८) वृत्तखंड का क्षेत्रफल = $A = \frac{Hc}{4}\sqrt{10}$ त्रिलोकसार में भी ऐसे अनेक सूत्र उपलब्ध हैं।[18] इन सूत्रों में से प्रायः सभी का व्यवहार अभी भी किया जाता है।

वृत्त की परिधि एवं उसके व्यास के अनुपात अर्थात् के मान की विवेचना अति प्राचीन काल से ही जैन आगम ग्रंथों में की जाती रही है। जैन परम्परानुसार इसका स्थूल मान ३ तथा सूक्ष्म मान $\sqrt{१०}$ स्वीकृत किया गया है। सूर्य प्रज्ञप्ति में इन दोनों मानों की चर्चा है १२। भगवती सूत्र अनुपयोग द्वार सूत्र, तत्वार्थाधिगम सूत्र भाग्य, तिलोयपण्णती, त्रिलोकसार आदि जैन ग्रंथों में भी ये मान उपलब्ध है। धवला में तो का मान ३५५/११३ दिया गाय है जो आधुनिक मान से बहुत ही निकट है। इसे चीनी मान कहा जाता है, पर ऐसा अनुमान है कि चीन में प्रयोग होने से पूर्व ही जैनाचार्यों ने इसका उपयोग किया है।

वर्तमान समय में प्रायिकता की खोज का श्रेय गेलिलियो, फरमेट, पास्कल, बरनौली आदि पाश्चात्य गणितज्ञों को दिया जाता है, पर प्रायिकता के सिद्धान्तों की नींव गुणात्मक रूप से आचार्य कुन्दकुन्द (५२ ई.पू. से ४४ ई. तक) एवं समन्तभद्र (२री शताब्दी) ने रख दी थी। स्याद्वाद के सप्तभंगों में सन्निहित इस सिद्धान्त का प्रयोग भी पाया जाता है। [२०] इस दिशा में अन्य अनेक मौलिकताएँ एवं विशिष्टताएँ जैन ग्रंथों में युग-युग से पल्लवित होती रही है।

भारतीय गणित के इतिहास में जिन दो जैन गणितज्ञों का महत्त्वपूर्ण स्थान है वे हैं श्री धराचार्य (८वीं शताब्दी) तथा महावीराचार्य (८५० ई.)। श्रीधराचार्य ने गणित सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रंथों पाटीगणित एवं त्रिंशतिका की रचना कर एक परम्परा स्थापित की। इन ग्रंथों में गणित के विभिन्न विषयों की अत्याधुनिक विधि का विवेचन किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि द्विघातीय समीकरण के हल करने की ऐसी वैज्ञानिक विधि की उन्होंने कल्पना की जो अभी भी उसी रूप में प्रयोग की जाती है। भास्कराचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१२ वीं शताब्दी) ने श्रीधराचार्य द्वारा स्थापित इस विधि को निम्न रूप में उद्धत किया है :-

'चतुराहत वर्गसमैं रूपैः पक्षद्वयं गणयेत्।
अव्यक्त वर्ग रूपैर्युक्तो पक्षों ततो मूलम्॥' [२१]

अर्थात् 'समीकरण के दोनों पक्षों को असात राशि के वर्ग के गुणांक के चौगुने से गुणा करें। दोनों में अज्ञात राशि के मौलि क गुणांक वर्ग को जोड़ दें। इस क्रिया की सहायता से द्विघातीय समीकरण $ax^2 + 4x + c = 0$ के मूल $x = \frac{-b \pm b2-4ac}{2a}$

महावीराचार्य का गणित के क्षेत्र में श्लाघनीय योगदान है। उनका गणित सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रंथ है गणित-सार-संग्रह जिसकी रचना पाठ्य पुस्तक की शैली में की गयी है। इसमें नियमों का प्रतिपादन उदाहरणों के साथ किया गया है। सर्वप्रथम उन्होंने ही घोषणा की कि ऋणात्मक राशि का वर्गमूल नहीं हो सकता।[२२] उन्होंने इस सम्बन्ध में प्रतिभापूर्ण निष्कर्ष देकर काल्पनिक राशियों की खोज के लिए मार्ग प्रशस्त किया। काल्पनिक राशि की जो परिकल्पना उन्होंने ९वीं शताब्दी में की वही यूरोप में कोंसी ने १८४७ ई. में की। वहीं सर्वप्रथम भारतीय गणितज्ञ हैं जिन्होंने गुणोत्तर श्रेणी के योग के लिए व्यापक सूत्र प्रतिपादित किया जो अभी तक प्रचलित है [२३] साथ ही उन्होंने क्रमचय-संचय के लिए व्यापक सूत्र की स्थापना की जो यूरोप में १६३४ ई. में आविष्कृत हुआ। [२४] इसी तरह अंकगणित ज्यामिति क्षेत्रमिति आदि शाखाओं में भी उनका योगदान स्तुत्य है। कतिपय ज्यामितीय आकृतियों के क्षेत्रफल के सूत्रों की उन्होंने ही सर्वप्रथम स्थापना की। निम्न वृत्त, उन्नत वृत्त, कंबुक वृत्त, दीर्घवृत्त, अन्तश्चक्रवाल वृत्त, वृश्चिक्रवाल वृत्त, हस्तंदत क्षेत्र, प्रणवाकार, यवाकार, मुरजाकार, वज्राकार क्षेत्र आदि आकृतियों के क्षेत्रफल निकालने की विधि उन्होंने दी। [२५] चक्रीय. चतुर्भुज सम्बन्धी उनके द्वारा स्थापित सूत्र शत प्रतिशत आधुनिक रूप का ही है। [२६] महावीराचार्य के अतिरिक्त राजादित्य, हरिभद्रसूरि, रत्नेखर सूरि, ठक्कर फेरू, सोमतिलक, महिमोदय, हेमराज, पं. टोडरमल आदि जैनाचार्यों ने भी अपनी अपनी रचनाओं में गणितीय सूत्रों का विश्लेषण किया। फलस्वरूप जैन गणित का उत्तरोत्तर विकास होता रहा।

उपर्युक्त सिंहावलोकन से यह अब स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने गणित के उन्नयन में श्लाघनीय योगदान दिया है। तथ्य भी प्रमाणित होता है कि उनके द्वारा प्रतिपादित स्थापित मौलिक गणितीय सिद्धान्त अभी भी व्यापक रूप में प्रचलित है। अतः वर्तमान संदर्भ में भी जैन गणित की उपादेयता उसी रूप में है जिस रूप में प्राचीन काल में थी। आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न ग्रंथाकरों में उपलब्ध, उपेक्षित पांडुलिपियों का अध्ययन एवं चिन्तन-मनन हो जिससे गणित में जैनाचार्यों के अवदान का सही-सही मूल्यांकन हो सके।

संदर्भ सूची

१. आर. शामशास्त्री (सं) वेदांग ज्योतिष, मैसूर, १९३६, श्लोक ४

२. लक्ष्मीचन्द्र जैन (सं.) गणित-सार-संग्रह, शोलापुर १९६३, १., पृ. २

३. वही, १.१६, पृ. ३

४. परमेश्वर का भारतीय गणित के अंध युग में जैनाचार्यों की उपलब्धियाँ, साध्वीरत्न कुसुमावती अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ ३४ - ७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. स्थानांग सूत्र श्लोक ६४३।

६. अनुयोग द्वार सूत्र श्लोक ११६।

७. लक्ष्मीचन्द्र जैन, तिलोयपण्णती का गणित, शोलापुर, १९५८, पृ. ५४।

८. गणित-सार-संग्रह, (सं. २), ३.१-१४, पृ. ३६-६०।

९. अनुयोग द्वार सूत्र, श्लोक १४२।

१०. एच. एल. जैन (सं.) धवला, भाग ३, पृ. २५३ तथा ल. च. जैन, मैथमैटिकल टापिक ऑफ धवला, आर. ज. एस. एस., ११.२ १९.६, पृष्ठ-[illegible]।

११. भगवती सूत्र श्लोक ३१४।

१२. धवला, भाग ३, पृष्ठ २०-२४ एवं ५६।

१३. अनुपम जैन जैन गणित की मौलिकताएँ एवं भावी शोध दिशाएँ, अर्हत्वचन, प्रवेशांक १९८८, पृ. १२०।

१४. त्रिकोलकसार, माधवचन्द (टीका), बम्बई, १९२०, पृ. १४-१५।

१५. भगवती सूत्र, श्लोक ६३५-२६।

१६. विशेष विवरण के लिए द्ररूख्य अनुपम जैन एवं सुरेश चन्द्र अग्रवाल, जैन गणितीय साहित्य, अर्हत् वचन, प्रवेशांक १९८८ एवं २६-२८ एवं लक्ष्मीचन्द्र जैन, इन्जैक्ट साइन्सेस फ्रोम जैन सोर्सेज, भाग १, जयपुर १९८२, पृ. ४५।

१७. लक्ष्मीचन्द्र जैन (सं. १६), पृ. ४६।

१८. वही. पृ. ४६।

१९. वही पृ. ३२-३३।

२०. रमेशचन्द्र जैन, स्याद्वाद के सप्तभंग एवं आधुनिक गणित-विज्ञान, अर्हत् वचन, प्रवेशांक १९८८, पृ - -,१३।

२१. सुधाकर द्विवेदी (सं.) बीजगणित, बनारस, १९२७ , पृ [illegible]।

२२. गणित-सार-संग्रह, १.५२, पृ. [illegible] ।

२३. वही, २.३, पृ. २८।

२४. वही, ६.२१८, पृ. १४६।

२५. वही, ७.१- २३२ १/२, पृष्ठ १८१-२५०।

२६. वही, ७.५०, पृ. १.३ ॥

* * * * *

प्रधानाचार्य
को. ओपरेटिव कॉलेज,
बेगूसराय (बिहार) - ८५११०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org